M.A.(Education),part- 1,paper-ll,
Presented by Dr.Pallavi
Topic- प्राचीन काल के शिक्षण संस्थानों का संगठन , मुख्य शिक्षण केन्द्र और संस्थाएँ (Organisation of Educational Institutions, Main Education Centres and Institutes of Ancient Period)

2.0प्रस्तावना (Introduction):प्राचीन काल में शिक्षण कार्य किए जाने वाले स्थान तथा इस कार्य में लगे लोगों के बारे में विस्तार से जानेगे ।

2.1 शिक्षण संस्थाओं का संगठन तथा अर्थ व्यवस्था (Organisation and Economic Condition of Educational Institutions) संस्थान (Institutions) प्राचीन भारत के इतिहास से पता चलता है कि विभिन्न युगों में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ थी ।

प्राचीन काल में साहित्य और व्यवसाय की शिक्षा परिवार में ही दी आती थी ।जब शिक्षा का विकास होने लगा तथा विशेषाध्ययन की ओर लोगों की रुचि बढ़ने लगी, तो पौड़ियों में अपनी पाठशाला आरंभ की। इसके पश्चात संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ। विहार और मंदिर क्रमशः विश्वविद्यालयों और मठों में परिणत हो गए।

जब शिक्षा का उत्थान होने लगा और लोगों को रुचि विशेषाध्यन की ओर होने लगी तो गुरुओं ने तीर्धों और प्रसिद्ध नगरों में अपनो स्वतंत्र पाठशालाएँ आरंभ कर दी। प्राचीन समय में तक्षशिला और वाराणसी में ऐसी अनेक स्वतंत्र शिक्षण संस्थाएँ थी। प्रत्येक विद्वान
का घर स्वयं स्वतंत्र शिक्षण संस्था के रूप में होता था । यदि विद्यार्थियों की संख्या अधिक बढ़ जाती, तो गुरु किसी योग्य या ज्येष्ठ शिष्य को ही अपनों सहायतार्थ अध्ययापन के लिए नियुक्त कर लेता था।

शिक्षा और बौद्ध विहार (Education and Monastry)

संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म पहले बौद्ध विहारों में हुआ । इन विहारों में भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहती थीं , किन्तु कालान्तर में ये विद्या के केन्द्र होकर विश्वविद्यालय में बदल गए। इनके प्रभाव से हिन्दुओं का मन्दिर भी विद्यालयों में परिणत हो गए। विभिन्न संप्रदाय के आचार्यों के मठ में भी अध्ययन-अध्यापन होता था।

नालन्दा और विक्रमशिला को हम बौद्ध विश्वविद्यालयों को प्रतिनिधि मान सकते हैं । सम्पूर्ण विश्वविद्यालय का अध्यक्ष कोई ख्याति प्राप्त भिक्षु होता था। संघ के सदस्य प्रायः उसका चुनाव करते थे। चुनाव में भिक्षु के चरत्रि, पाण्डित्य और वय का ध्यान रखा जाता या। प्रधानाचार्य की सहायतार्थ दो समितियां थीं-प्रथम शिक्षा समिति तथा द्वितीय प्रबंध समिति। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के प्रवेश, पाठ्यक्रम निर्धारण तथा अध्यापकों में पाठय-विषयों के विभाजन का कार्य शिक्षा समिति करती थी। यह पुस्तकालयों का भी प्रबन्ध करती थी। प्रबंधन समिति का कार्य सामान्य व्यवस्था की देखभाल करना तथा आय-व्यय का संचालन करना था। नये भवनों तथा पुराने भवनों की मरम्मत, छात्रोके लिए आवास, भोजन-वस्त्र , चिकित्सा की व्यवस्था तथा विहारों के अन्य कार्यों का संचालन इसी समिति के कार्यक्षेत्र में था।

देवालय (Temple) देवालयों में भी विद्यालयों को स्थापना कर दी गई थी उनका प्रबंध ग्राम सभी की उपदेवालय समिति करती थी। दान में मिली निधियों या गाँवों का प्रबंध तथा पाठशाला में अध्यापकों की नियुक्ति भी इसी निर्णय पाठशाला के प्रधानाचार्य के परामर्श से यही समिति करती थी। पाठशाला के आंतरिक प्रबंध का उत्तरदायित्व आचार्य पर या । में भूतों को नियुक्ति तथा

देवालय (Simple)

देवालयों में भी विद्यालयों की स्थापना कर दी गई थी। उनका प्रबंध ग्राम सभा की उपदेवालय समिति करती थी। दान में मिली निधियों या गांवों का प्रबंध तथा पाठशाला में अध्यापकों की नियुक्ति भी इसी निर्णय पाठशाला के प्रधानाचार्य के परामर्श से यही समिति करती थी। पाठशाला के आंतरिक प्रबंधन का उत्तरदायित्व

आचार्य पर था। छात्रावासों के निरीक्षण, उनमें विद्यार्थियों का प्रवेश, भोजनालयो में भृत्यों को नियुक्ति तथा उनके लिए रसद आदि का प्रबंध आचार्य ही करता था। इन विद्यालयों में छात्रों के पढ़ने तथा रहने केलिए विशाल और शानदार भवन बने हुए थे।

छात्रावास (Hostels)

इन पाठशालाओं ओर विश्वविद्यालयों के साथ-साथ छात्रावास भी बनने लगे। इनमें अधिकारियों की ओर से ऐसे भोजनालयों का प्रबंध किया जाता था ; जिनमें एक साथ बहुत से विद्यार्थी भोजन करते थे। छात्रों के कमरों में शयन के लिए पत्थर की चौकियाँ तथा दीपक आदि रखने के लिए तारवे बने हुए थे। कुछ स्थानों में तो विद्यार्थियों को वस्त्र और दवाएँ भी निःशुल्क दी जाती थी। बीमार छात्रों के लिए चिकित्सा भी व्यवस्था थी ।

नामांकन (Admission)

प्रवेश के अवसर पर प्रत्येक विद्यार्थी की योग्यता की जांच के लिए कड़ी परीक्षा ली जाती थी। इस अवसर पर उनके चरित्र और युद्ध दोनों को जांच होती थी। चरित्रहीन विद्यार्थी का प्रवेश एकदम वर्जित था । नालन्दा जैसे प्रसिद्ध विद्यापीठ में प्रवेश के लिए बड़ी भोड़ जुटती थी। वहाँ को प्रवेशिका परीक्षा बड़ी दुरूह थी। 10 प्रवेशार्थियों में से दो या तीन को ही प्रवेश पाने में सफलता मिल पाती यो। नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालय में प्रवेशार्थियों की बुद्धि चरित्र और योग्पता की जाँच के लिए दक्ष आचार्य नियुक्त थे।

सत्र (Session)

सभी उपलब्ध प्रमाणों से प्राय यह सिद्ध होता है कि एक अध्यापक के अन्तर्गत प्रायः 15 विद्यार्थी पढ़ते थे। प्राचीन काल में वार्षिक अध्ययन सत्र पाँच-छ: मास से अधिक समय तक नहीं चलते थे । जब साहित्य और ज्ञान में बहुत वृद्धि हो गई तो वर्ष भर से सत्र होने लगे। प्रत्येक मास में 4 छुट्टियाँ, एक-एक सप्ताह के अन्तर पर होती थी मास की प्रतिपदा, पूर्णिमा तथा प्रत्येक अष्ठमी को अनध्याय रहता था। बस्ती पर आक्रमण, डाकुओं के उत्पात, अतिथियों के आगमन पर राजा या महापुरुषों के निघन पर अनध्याय हो जाता थे। मौसम में खराबी आदि के कारण भी छुट्टियाँ हो जाती थी।

अध्ययन वर्ष Academic Session)

प्राचीन भारतीयों को धारणा थी कि ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है । उसकी प्राप्ति के लिए कोई अवधि निश्चित नहीं की जा सकती। अतः अध्ययन की अवधि और विषय का निर्णय विद्यार्थी की योग्यता, सुविथा और इच्छा पर निर्भर था। जो विद्यार्थी अपने विषयों में पारंगत होता चाहते थे, तो 24 या 30 वर्ष तक अध्ययन करते थे। घर लौटने के लिए उत्कंठित तथा साधारण ज्ञान से संतोष कर लेने वाले विद्याथो 6 मास में या कभी-कभी 3 वर्ष में ही घर लौट जाते थे। कुछ व्यक्ति आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे तथा सारा समय धर्म और शिक्षा में लगाते थे। उन्हें नैष्ठिक कहते थे।

निःशुल्क शिक्षा (Free Education)

प्राचीन समय में विद्या दान सर्वोत्तम दान माना जाता था, क्योंकि इस समय धर्म का लोगों का बहुत प्रभाव था। विद्यादान को अधिक प्रोत्साहन देने से जनता और राज्य ने शिक्षा उन्नति के लिए अपार धनराशि दान में दी। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्धन विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देना सम्भव हो गया ।

प्राचीन काल में अनेक प्रकार से लोग शिक्षा के प्रसार में सहायता देते । निर्धन से निर्धन गृहस्थ का यह धर्म माना गया था कि यदि कोई विद्यार्थी द्वार पर अन्न-भिक्षा के लिए आए तो उसे थोड़ा सा चावल या रोटी अवश्य दें। श्राद्ध के अवसर पर ब्राहमणों को दान दिया जाता था। धार्मिक उत्सवों में भोजन के लिए अधिक से अधिक विद्यार्थी और अध्यापक निमंत्रित किये जाते थे । धनी व्यक्ति शिक्षा के कार्य में ठोस सहायता करते थे। ये स्नातकों को गुरु दक्षिणा चुकाने के लिए पर्याप्त धन देते थे। ये दुर्लभ ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराने में भी बहुत धन व्यय करते थे तथा उनको विद्वानों या पाठशालाओं को भेंट करते थे तथा कभी-कभी अधिकांश खर्च भी उठाते थे। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष उपायों द्वारा राज्य शिक्षा को प्रोत्साहन देता था। राजा विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना कराते तथा इन्हें दान देते थे। नालन्दा में गुप्त राजाओं ने बड़े-बड़े दान दिये थे। दरबार में आने वाले अधिकांश विद्वान ब्राहाणों को ,राजा भूमि दान करता था ।या उनकी वृत्ति बांध देता था। कनिष्क, चन्द्रगुप्त द्वितीय, हर्ष आदि राजाओं की उदारता इतिहास में प्रसिद्ध है। राज दरबारों में शास्त्रार्थ हुआ करते थे तथा विजयौ विद्वान को शासन की ओर से पुरस्कार दिया जाता था। राज्य में विद्वान ब्राहमणों को कर मुक्त कर दिया गया था। इससे भी अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें आर्थिक लाभ होता था। प्राचीन भारत के राजा शिक्षा के लिए दान देते थे, किन्तु पद्धति पर नियंत्रण रखने का प्रयल नहीं करते थे।

3.2 मुख्य शिक्षण केन्द्र और संस्थाएँ (Main Education Centres and Institutions)

सुदीर्घ काल तक अध्यापक व्यक्तिगत रूप में अध्यापन का कार्य करते थे। इस प्रकार की पाठशालाएँ समस्त भारत में पाई जाती थी । किन्तु राजाओं को राजधानियों तथा तीर्थ-स्थानों में इनकी संख्या वहुत थी। राजा और सामन्त विद्या को प्रोत्साहन देते थे, जिससे विद्धान उनकी राजधानियों को ओर आकर्षित होते थे । इन्हों परिस्थितियों ने तक्षशिक्षा, पाटलिपुत्र, कान्यकुंज और मिथिला को उत्तर भारत में तथा नालखेड, कल्याणी और तंजोर दक्षिण में प्रसिद्ध विधा केन्द्र बना दिया था । काशी, कांची, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये। कभी-कभी राजा विद्वान ब्राहमणों को आमंत्रित कर नये ग्राम में बसा कर उनके भरण-पोषण की व्यवस्था कर नई बस्तियाँ बसाते थे । ये ग्राम अग्रहार ग्राम कहलाते थे तथा शिक्षा के केन्द्र रूप में प्रसिद्ध हो गये । बौद्ध विहार और मन्दिर भी शिक्षण संस्थाओं में परिणत हो गये। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने मठ स्थापित किए । जो महत्त्वपूर्ण मठ स्थापित किए, वे महत्त्वपूर्ण शिक्षा के केन्द्र के रूप में परिणत हो गये।

तक्षशिला (Takshila)

तक्षशिला रावलपिंडी से पश्चिम की दिशा में लगभग 20 मील की दूरी पर स्थित था । वह गांधार को राजधानी थी । ई०पू० छठ शती में ही यह स्थान शिक्षा का बड़ा केन्द्र हो गया। आवागमन की कठिनाइयों और भय के उपरान्त भी काशी, राजगृह, मिथिला और उज्जैन जैसे सुदूर स्थानों पर उच्च अध्ययन के लिए विद्यार्थी यहाँ पर आते थे। धनुर्विद्या के एक विद्यालय में देश के विभिन भागों के 103 राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। जातकों से ज्ञात होता है कि काशी के युवराजों की शिक्षा-दीक्षा प्राय: तक्षशिला में ही होती थी। कौशल के राजा प्रसेनजित की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी । जीवक औषधि विज्ञान तथा चिकित्सा के अध्ययन में 7 वर्ष व्यतीत किए थे । पाणिनि तथा कौटिल्य भी यही शिक्षित हुए थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह अपने दार्शनिकों के लिए प्रसिद्ध था।

तक्षशिला में विश्वविद्यालय और महाविद्यालय जैसे शिक्षण संस्थाएं नहीं था । किन्तु अध्यापकों ने अपनी स्वतंत्र शिक्षण संस्थाएं खोल रखी थीं, ही पर देश के विभिन्न भागों से आये हुए सैकड़ों विद्यार्थी अध्ययन करते थे। एक अध्यापक बीस विद्यार्थियों से अधिक को नहीं पढ़ा सकता था। इस कारण, अध्यापन के लिए वह योग्य विद्यार्थियों को सहयोगी के रूप में नियुक्त कर लेते थे। विद्यार्थी प्राय: गुरु के मकान में ही ठहरते थे। किन्तु, धनी विद्यार्थियों के ठहरने के लिए अलग व्यवस्था थी। यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। जैसे ज्योतिष, शल्य चिकित्सा, धनुर्विद्या , वेद, व्याकरण, दर्शन, 18 शिल्प, नृत्य, चित्रकला आदि। विषयों के चयन में वर्ण

बाधक नहीं क्षत्रिय वेदों का अध्ययन करते थे तथा ब्राह्मण धनुर्विद्या सौखते थे। बनारस के एक राजपुरोहित ने अपने पुत्र को तक्षशिला में वेदाध्ययन लिए नहीं, बल्कि धनुर्विद्या की शिक्षा के लिए भेजा था।

समय-समय पर तक्षशिला पर विदेशी आक्रमण हुए और विदेशियों ने इस नगर को अपने अधिकार में कर लिया। ई०पू० छठी शती में इस स्थान को ईरानियों ने जीता। इस पर यूनानियों, शकों और कुषाणों का भी आधिपत्य रहा। इन विदेशियों का भी यहाँ पर कुछ प्रभाष पड़ा। ऐसा माना जाता है कि ईरानियों के प्रभाव के कारण ब्राह्मी का स्थान खरोष्ठी ने ले लिया। यहाँ के अध्यापक यूनानी भाषा और साहित्य का भी अध्ययन विद्यार्थियों को कराते थे। भारतीय कला और सिक्कों पर यूनानियों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। यूनानी नाटकों ने भी भारतीय नाट्य कला पर असर डाला। ऐसा प्रतीत होता है कि तीसरी शताब्दी में शिक्षा की दृष्टि से तक्षशिला का महत्त्व जाता रहा।

काशी (Kashi)

काशी भी विद्या के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रही है और देश-देशान्तर के विद्यार्थी यहाँ पर अध्ययन के लिए आते थे । कोसिय तथा तितर जातकों से ज्ञात होता है कि यहाँ के यशस्वी आचार्य तीनों वेदों और अठारह शिल्पों का अध्यापन करते थे । अकित जातक से पता चला है कि 16 वर्ष की आयु वाले विद्यार्थी काशी में अध्ययन के लिए उमड़ पड़ते थे ।

ई०पू० छठी शताब्दी में काशी विद्या का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था । ऐसा प्रतीत होता है कि इसी कारण बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार सर्वप्रथम यहीं से प्रारंभ करने का निश्चय किया था। अशोक के संरक्षण में सारनाथ का बौद्ध विहार, शिक्षा का बड़ा प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। ईसा की सातवीं शताब्दी तक निरन्तर इसकी उन्नति होती रही, जैसा कि ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है। यहाँ 1500 भिक्षु-विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। बारहवीं शताब्दी तक बौद्ध विद्या के केन्द्र और तीर्थ के रूप में इसकी ख्याति बनी रही ।

काशी के बारे में, ब्राह्मण- विद्या के केन्द्र के रूप में, विशेष जानकारी नहीं मिलती। केवल भविष्यपुराण में उल्लेख मिलता है कि यह स्थान पांडित्य का एक बड़ा केंद्र होगा। यहां पर कोई संगठित शिक्षण संस्थान नहीं थे । यहाँ के ब्राह्मण अपनी स्वतंत्र पाठशालायें चलाते थे।

नालंदा (Nalanda)

नालंदा पटना से दक्षिण की ओर लगभग 50 मील की दूरी पर है। प्राचीन काल में यह स्थान बौद्ध धर्म का केन्द्र था क्योंकि महामा बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र का जन्म यहाँ हुआ था। कहा जाता है कि अशोक ने यहाँ पर एक मंदिर भी बनवाया था। शिक्षा के केन्द्र के रूप में इसका उदय 450 ई० में हुआ था। फिर भी गुप्त राजाओं को प्रेरणा से यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया। कुमार गुप्त ने यहाँ पर विहार की स्थापना तथा दान देकर इस विश्वविद्यालय की नींव डाली। नरसिंहगुप्त, बालादित्य और बुद्ध ने इसके उत्थान में योगदान दिया।

उत्खनन से पता चलता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय कम से कम 1 मोल चौड़ा और 12 मील लम्बा था । पूर्व निश्चित योजनानुसार विहार और तत्सम्बन्ध स्तूपों का निर्माण हुआ था । मुख्य विद्यालय से सम्बन्ध 7 विशाल व्याख्यान मंदिर तथा अध्यापन अध्यापन के लिए 300 छोटे कमरे थे। इसके चारों ओर पर परिखा थी, जिसका द्वारा दक्षिण में था।

भिक्षु-विद्यार्थियों के आवास के लिए इन विहारों का निर्माण हुआ था ये कम-से-कम दो मंजिल तो अवश्य थे। इनमें कुछ कमरे ऐसे थे, जिसमें एक विद्यार्थी तथा कुछ में दो विद्यार्थी रह सकते थे। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए पत्थर की एक चौड़ी चौकी, दीपक और पुस्तके रखने के लिए ताक बना हुआ या। इस विश्वविद्यालय को दान में

200 गाँव मिले हुए थे। इस कारण विद्यार्थियों के आवास तथा भोजन की व्यवस्था निःशुल्क थी। यहाँ विद्यार्थियों की संख्या दस हजार थी। विश्वविद्यालय के महापंडितों और विवाद पंडितों के नाम प्रवेश के उतुंग, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानमित्र और शीलभद्र प्रसिद्ध थे। ये वि उन्होंने महत्त्वपूर्ण ग्रंथो की रचना भी की थी । उपर्युक्त विद्वान ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए थे। दस हजार विद्यार्थियों के अध्यापन लिए एक हजार अध्यापक नियुक्त थे। यहाँ पर प्रवेश पाने के लिए देश के कोने-कोने से तथा विदेशों से भी विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे । प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों की योग्यता सम्भावतया ऊँचा था। दस में तीन प्रवेशार्थियों को चुना जाता था। चीन से आने वाले विद्वानों में फाह्यिन ,ह्वेनसांग और इत्सिगं के नाम प्रसिद्ध हैं । इन्होंने नालन्दा में रह कर अध्ययन किया तथा कुछ ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ भी की थी ।

अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लाभार्थ नालन्दा विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय था। या तीन खंडों में स्थित था। विद्यापीठ में 8 विशाल व्याख्यान भवन तथा 300 छोटे कमरे थे । प्रतिदिन लगभग 100 व्याख्यानों का प्रबंध किया जाता था। सम्पूर्ण प्रबंध प्रधान नियामक भिक्षु महास्थविर होता था, जिसके सहायतार्थ दो परिषद रहती थी, प्रथम, शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए तथा द्वितीय, सामान्य प्रबंध के लिए।

ईसा की आठवीं शताब्दी से नालन्दा के विद्वानों ने तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार में बड़ा योगदान दिया। बारहवीं शताब्दी तक यह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का केन्द्र बना रहा। जावा एवं सुमात्रा का राजा बलपुद्धदेव इसके पश और कीर्ति से बहा प्रभावित हुआ और उसने यहाँ विहार बनवाया तथा बंगाल के राजा देवपाल से उसके व्यप के लिए पांच गाँव दान देने की प्रार्थना की।

ग्यारहवीं शताब्दी से नालन्दा विश्वविद्यालय की अवनति होने लगी, क्योंकि विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने से नालंदा की ओर इसे अधिक राजाश्रय मिला। इस काल में बौद्धों में तंत्रविद्या का प्रचार बहुत बढ़ गया था । अत: इसने संभवतः गंभीर अध्ययन के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित की होंगी। बारहवी शताब्दी के अन्त में मुस्लिम आक्रमण से, जिसका नेतृत्व बख्तियार खिलजी ने किया था, नालन्दा बुरी तरह नष्ट हो गया। भजन तथा पुस्तकालय को जलाकर नष्ट कर दिया गया तथा भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया ।

वल्लभी (Vallabhi)

वल्लभी काठियावाड़ में स्थित था तथा यह सातवों सदी से मैत्रकों की राजधानी थी । यहाँ भारी मात्रा में अंतराष्ट्रीय व्यापार होता था। व्यापार से अधिक यह विधा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। इत्सिंग का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र में नालंदा को समता करता था ।640 ई० में यहाँ 100 विहार थे, जिनमें 6000 भिक्षु अध्यापन करते थे| सातवीं सदी में स्थिरमति और गुणमति यहाँ के प्रसिद्ध विद्वान थे । गंगा के दोआब के ब्राह्मण अपने पुत्रो को शिक्षा के लिए यहाँ पर भेजते थे। यह धार्मिक उदारता तथा बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए प्रसिद्ध था । यहाँ पर लौकिक विषय जैसे कानून, हिसाब , अर्थशास्त्र तथा साहित्य जैसे विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी । धनी व्यापारियों तथा मैत्रक राजाओ ने इसकी उन्नति में बडा योगदान दिया ।

विक्रमशिला (Vikramshila)

विक्रमशिला बिहार, जिसकी स्थापना धर्मपाल ने की थी, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शिक्षा का केन्द्र था। उसने यहाँ मन्दिर और मठ बनवाये तथा उन्हें अतुल दान दिया। उसके उत्तराधिकारी ने भी इसे बड़ा प्रोत्साहन दिया। यहाँ के भिक्षु प्रसिद्ध विद्वान थे और उनका यश चारों ओर फैल गया था। तिब्बत में बौद्ध धर्म संस्कृति के प्रचार का श्रेय यहाँ के भिक्षुओं को जाता है। यहाँ के विद्धानों ने अनेक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे और उनका तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। विक्रमशिला के विद्वानों में प्रसिद्ध 11 बीं सदी में दोपंकर श्रीज्ञान थे जो उपाध्याय के नाम से

प्रसिद्ध हुए। राजा चानचूब के निमंत्रण पर वे तिब्यत गए और यहाँ बौद्ध धर्म के सुधार में महत्वपूर्ण कार्य किया। ऐसा माना जाता है कि ये 200 मौलिक और अनुवादित ग्रंथों के लेखक थे।

बारहवों शताब्दी में तीन हजार भिक्षु अध्ययन करते थे यहाँ पर व्याकरण न्याय, तंत्र, धर्म और दर्शन आदि विषय पढ़ाये जाते थे। स्नातकों के समावर्तन के अवसर पर बंगाल के पाल राजा कुलपति की हैसियत से विद्यार्थियों के उपाधियों तथा प्रमाण पत्रों का वितरण करते थे। 1203 ई० में मुसलमानों ने बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में दुर्ग के भम में इसको नष्ट कर दिया। उस समय शाक्य श्रीभद्र इस बिहार के महास्थविर थे। तबाकत-ए नारीरी में विध्वंश विवरण उपलब्ध है।

कश्मीर में विद्या का केन्द्र (**Educational** Centres in Kashmir)

ईस्वी सन् के प्रारंभ से कश्मीर में भी विद्या का केन्द्र हो गया। जब बौद्ध धर्म मध्य एशिया में फल-फूल रहा था, तब कश्मीर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का शिक्षा केन्द्र हो गया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान कुमार जीवन दो साल तक अध्ययन के लिए खोतन से कश्मीर आए थे। यहाँ ब्राह्मण-विद्या के केन्द्र मठ कहलाते थे तथा बौद्ध केन्द्र विहार यहां के राजाओं जैसे ललितादित्य, यशस्कर, दिद्वा और अनंत ने मठो और विहारों को बहुत दान दिया। 1010 ई० में जम पंजाय पर मुसलमानों का अधिकार हो गया तथ अनेक मुसलभान पंमाय से आकार कश्मीर में बस गए। कश्मीर पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण विद्या का केन्द्र हो गया। बिल्हण अपनी जन्म भूमि की प्रशंसा में लिखा है कि यहाँ नारियाँ संस्कृत और प्राकृत बोलती थीं।

देवालयों में विद्यापीठ (Schools within Temple Campus)

देवालयों में विद्यापीठ में परिणत होने के प्रमाण दशक शताब्दी से मिलते हैं। महाराष्ट्र के बीजापुर जिले में सालोन्मी नाम ग्राम दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में वैदिक शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र था जहाँ विद्यार्थियों के लिए भोजन और आवास को निःशुल्क व्यवस्था थी। उनकी संख्या करीब 200 थी। यह संस्था जनता के चन्दे पर चलती थी तथा यह चन्दा विवाह उपनयन, भोज आदि अवसों पर एकत्रित किया जाता था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में दक्षिण में अरकाट जिले को एनारिम नामक स्थान में एक और सुव्यवस्थित विद्यापति था। यहां पर विद्यार्थियों की संख्या 340 थी और अध्यापक 16 थे। इसी समय चिंगलपट जिले में तिरिमुवकुदल नामक स्थान की व्यंकटेश पेरूमल देवालय अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था थी। इसके तत्वाधान में एक विद्यापीठ एक विद्यार्थीशाला तथा एक चिकित्सालय चालते थे। चिंगलपट जिले के तिस्पोरियूर नामक स्थान में 13 वीं शताब्दी में व्याकरण को शिक्षा के लिए एक विशाला विद्यापीठ थी। 1268 ई० में मल्कापुरम, के एक लेख से एक देवालय विद्यापीठ, विद्यार्थीशाला तथा चिकित्सालय की स्थिति का पता चलता है। उक्त विद्यापीठ में 8 अध्यापक थे। इस प्रकार अन्य देवालय विद्यापीत भी दक्षिण में इस समय चलते थे।

3.3 अग्रहार विद्यालय के केन्द (Educational Institutions of Agrahara (Shifted Village)

प्राचीन समय में राजा विद्वान ब्राह्मणों को आमंत्रित करते थे, ग्रामों में बसाते थे और उनको निर्वाह के लिए दान में ग्राम देते थे। ऐसे ग्राम अग्रहार कहलाते थे। ऐसे ग्राम शिक्षा के केन्द्र बन गए, जहाँ विभिन्न विषयों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी ऐसे अनेक अग्रहारों के उदाहरण मिलते हैं। राष्ट्रकूटों के शासनकाल में कादियूर ग्राम 200 विद्वान ब्राह्मणों को मिला। अन्य ग्राम सर्वज्ञपुर मैसूर के हसन जिले में स्थित है, यहां के ब्राह्मण भी अध्ययन-अध्यापन कार्य करते थे ।